क़ुरआन की परिवार सम्बन्धी शिक्षाएँ

डॉ॰ मुहम्मद रज़ीउल-इस्लाम नदवी

विषय-सूची

विषय	पृ०
दो शब्द	5
इस्लाम की पारिवारिक व्यवस्था पर एतिराज़	7
मज़बूत बुनियादों पर ख़ानदान का निर्माण	8
कामों का बँटवारा	10
औरतों की आज़ादी से जुड़े संगठनों की ग़लती	11
मर्द ख़ानदान का सरदार	12
घरेलू हिंसा की इजाज़त नहीं	14
औरत पर कमाने का बोझ नहीं	16
एक से ज़्यादा बीवियाँ	17
तलाक़ का मसला	19
खुला का हक़	20
भ्रूण हत्या की इजाज़त नहीं	21
माँ-बाप और रिश्तेदारों के साथ अच्छा सुलूक	22
विरासत में औरत का हक़	23

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'
"अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है"

दो शब्द

इस्लाम ख़ुदा का भेजा हुआ वह रास्ता है जिस पर सही तौर पर चलने से यक़ीनन इस दुनिया की ज़िन्दगी तो सँवरनी ही है, मरने के बाद आने वाली आख़िरत की ज़िन्दगी भी कामयाब हो जाती है। गड़बड़ी तब होती है जब हम इस्लाम की शिक्षाओं पर आधा-अधूरा अमल करते हैं या उसके ख़िलाफ़ अमल करते हैं।

दूसरी तरफ़ हमारे देश के कुछ लोग जानकारी न होने के या फिर आधी-अधूरी जानकारी की बुनियाद पर इस्लाम की बहुत-सी शिक्षाओं पर आपत्तियाँ करने लगते हैं। इसी सिलसिले में इस्लाम की घरेलू और पारिवारिक शिक्षाओं पर भी एतिराज़ किए जाते हैं कि इस्लाम औरतों को वे अधिकार नहीं देता जिसके वे अधिकार हैं। इस के अलावा भी इस सिलसिले में बहुत-सी बातें कही जाती हैं।

इस किताब में इस्लाम के एक बड़े आलिम जनाब डॉ॰ मुहम्मद रज़ीउल-इस्लाम नदवी ने इस्लाम की पारिवारिक व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं पर रौशनी डाली है और एतिराज़ों का जवाब दिया है। उम्मीद है इससे अवश्य ही ग़लतफ़हमियाँ दूर होंगी और इस्लाम का सही रूप सामने आएगा।

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (रजि॰) हिन्दी भाषा में इस्लाम और मुसलमानों के बारे में किताबें तैयार करने के अहम काम में लगा हुआ है और उसके द्वारा ही बहुत-सी किताबें तैयार होकर प्रकाशित हो चुकी हैं।

हम डॉ॰ मुहम्मद रज़ीउल-इस्लाम नदवी के शुक्रगुज़ार हैं कि उन्होंने उर्दू ज़बान में यह किताब तैयार की जिसका हिन्दी तर्जमा आप की ख़िदमत में पेश किया जा रहा है। इस उम्मीद पर कि इसे ज़्यादा-से-ज़्यादा फैलाया जाएगा। ख़ुदा से दुआ है कि वह इस किताब के लेखक को इसका अच्छा

बदला दे और इस किताब से लोगों को ज़्यादा-से-ज़्यादा फ़ायदा पहुँचाए।

पाठक अगर इस्लाम और क़ुरआन के सम्बन्ध में और अधिक जानकारी चाहते हैं तो वे हमसे सम्पर्क करें। आप हमारे टोल फ़्रिरी नं॰ पर भी सम्पर्क कर सकते हैं।

नसीम ग़ाज़ी

सेक्रेट्री

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट

(दिल्ली)

इस्लाम की पारिवारिक व्यवस्था पर एतिराज़

इस्लाम के जिन पहलुओं पर सबसे ज़्यादा एतिराज़ किए गए हैं उनमें से एक उसका ख़ानदानी निज़ाम है। कहा जाता है कि मुसलमान औरत के लिए ख़ानदान एक क़ैदख़ाना जैसा है। वह शौहर की ग़ुलाम और उसके अधीन होती है। उसके ऊपर अनगिनत ज़िम्मेदारियाँ थोप दी जाती हैं, लेकिन वह अपने तमाम हक़ों और अधिकारों से वंचित रहती है। उसे इतना भी अधिकार नहीं होता कि अपने घर से बाहर निकल सके और दूसरों से समाजी ताल्लुक़ बना सके। परदे के नाम से उसके बाहर आने-जाने और काम करने पर पाबन्दी लगा दी गई है। नौकरी करने और रोज़ी-रोटी के लिए भाग-दौड़ से रोककर उसे पूरे तौर पर शौहर का मोहताज बना दिया गया है। इसके मुक़ाबले में मर्द को खुली छूट हासिल है कि चार-चार औरतों को अपनी बीवी बनाकर रखे और जब चाहे उनमें से किसी को तलाक़ देकर अपने से अलग कर दे। इस तरह की और भी बहुत-सी बातें कही जाती हैं।

ये तमाम बातें इस्लाम की हक़ीक़ी तालीमात (शिक्षाओं) को न जानने का नतीजा है। कभी-कभी मुसलमानों की बेअमली, उनकी तरफ़ से औरतों पर ज़ुल्म-सितम और उनके हक़ों और अधिकारों को हड़प लेने से भी ये ग़लतफ़हमियाँ पैदा होती हैं। इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि क़ुरआन और सुन्नत की रौशनी में ख़ानदान के बारे में इस्लाम की हक़ीक़ी तालीमात से लोगों को आगाह किया जाए। उन्हें बताया जाए कि मुसलमान औरत अपने ख़ानदान में बेटी, बहन, बीवी और माँ की हैसियतों में प्यार, मुहब्बत और इज़्ज़त व एहतिराम की नज़र से देखी जाती है। उसे तमाम बुनियादी इनसानी हुक़ूक़ हासिल रहते हैं। वह शौहर की ग़ुलाम और मातहत नहीं, बल्कि उसकी साथी-संगिनी, मददगार, हमदम और हर वक़्त साथ देनेवाली होती है। साथ ही इस बात की भी ज़रूरत है कि हमारा किरदार (चरित्र)

हमारी ज़बान की गवाही दे रहा हो। हम वास्तव में अपनी अमली ज़िन्दगी में औरतों को वे हक़ दे रहे हों जिनके हम दावेदार हैं।

इस किताब में कोशिश की जाएगी कि ख़ानदान के बारे में इस्लाम की अह्म तालीमात (शिक्षाएँ) संक्षिप्त में बयान कर दी जाएँ, ताकि मुसलमान औरत की हैसियत और मक़ाम व मर्तबे के बारे में पाई जानेवाली ग़लतफ़हमियाँ दूर हों और इस आईने में हम भी अपनी तस्वीर देख सकें।

मज़बूत बुनियादों पर ख़ानदान का निर्माण

इजतिमाई और सामाजी ज़िन्दगी में ख़ानदान को बुनियादी हैसियत हासिल है। इसकी बुनियाद मर्द और औरत के पाकीज़ा मिलन पर रखी गई है। इनसानी समाज इस मिलन और ताल्लुक़ को अलग-अलग नज़रों से देखता रहा है। कुछ लोग तो मर्द-औरत के इस ताल्लुक़ को ख़ुदा की याद में रुकावट मानकर उससे बिलकुल ही अलग हो गए और उन्होंने संन्यास लेकर ज्ञान-ध्यान को अपनी ज़िन्दगी का अस्ल मक़सद बना लिया, जबकि कुछ दूसरे लोगों ने जिंसी (लैंगिक) सुख के लिए मुकम्मल आज़ादी का रवैया अपनाया और किसी भी पाबन्दी को क़बूल करने से इनकार कर दिया। ये दोनों रवैये इनसानियत को तबाही और बरबादी के रास्ते पर डालनेवाले थे और हम जानते हैं कि दुनिया ने इनके कड़वे-कसैले फ़लों का मज़ा चखा है और उनकी कड़वाहटों को झेला है। इस्लाम की तालीमात (शिक्षाएँ) इन दोनों रवैयों के बीच संतुलन के रास्ते को अपनाती है। इस्लाम संन्यास को नहीं मानता और न आवारगी की खुली छूट देता है। उसने मर्द-औरत के जिंसी ताल्लुक़ को क़ानूनी बुनियाद मुहैया की है और उसके साथ निकाह (शादी) की शर्त लगाई है। वह मर्दों और औरतों दोनों को पाबन्द करता है कि निकाह के बग़ैर मर्द-औरत आपस में किसी तरह का कोई ताल्लुक़ (सम्बन्ध) न क़ायम करें, न खुल्लम-खुल्ला, न चोरी-छिपे। क़ुरआन में है—

> "इस तरह कि तुम इनसे बाक़ायदा निकाह करो, यह नहीं कि खुले तौर पर ज़िना (व्यभिचार) करो या छिपे तौर पर बदकारी करो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-5)

"वे पाक दामन हों, न कि खुले तौर पर बदकारियाँ करनेवालियाँ, न चोरी-छिपे आशनाई करनेवालियाँ।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-25)

ऊपर की आयतों में अरबी शब्द 'हिस्न' इस्तेमाल हुआ है जिसके मानी 'क़िला' के होते हैं। यह लफ़्ज़ इस्तेमाल करके क़ुरआन इस बात की तरफ़ इशारा करना चाहता है कि निकाह के ज़रिए से मर्द और औरत दोनों शैतान के हमलों से खुद को महफ़ूज़ (सुरक्षित) कर लेते हैं। इसलिए अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने निकाह पर ज़ोर दिया। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ऐ नौजवानो! तुममें से जो भी शादी करने की सकत (सामर्थ्य) रखता हो उसे शादी कर लेनी चाहिए।"

(हदीस : बुख़ारी-5065, 5066, मुस्लिम-1400)

निकाह का एक मक़सद इस्लाम यह क़रार देता है कि इसके ज़रिए से शौहर-बीवी को एक-दूसरे से सुकून और इत्मीनान हासिल होता है और फ़ितरी तौर पर उनके बीच मुहब्बत और प्यार, रहम-दिली और हमदर्दी पैदा हो जाती है। इसे अल्लाह तआला अपनी एक निशानी क़रार देता है। क़ुरआन में है—

"उस (अल्लाह) की निशानियों में से है कि उस (अल्लाह) ने तुम्हारे लिए तुम्हारी ही जिंस (सहजाति) से बीवियाँ बनाईं, ताकि तुम उनके पास सुकून हासिल करो और तुम्हारे बीच मुहब्बत और रहमत पैदा कर दी।" (क़ुरआन, सूरा-30 रूम, आयत-21)

अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"दो लोगों के बीच मुहब्बत पैदा करने के लिए निकाह जैसी कोई चीज़ नहीं देखी गई।" (हदीस : इब्ने-माजा-1847)

निकाह का दूसरा मक़सद इस्लाम की नज़र में यह है कि इससे इनसानी नस्ल का सिलसिला जारी रहे और जो औलाद हो वह माँ-बाप के साए में, उनकी शफ़क़त और मुहब्बत के तहत परवान चढ़े। अल्लाह का फ़रमान है—

"(वैवाहिक सम्बन्ध के ज़रिए से) अल्लाह ने जो औलाद तुम्हारे

हिस्से में रख दी है, उसे हासिल करो।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-187)

एक दूसरी जगह कहा गया–

"अपने मुस्तक़बिल (भविष्य) की फ़िक्र करो।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-223)

कामों का बँटवारा

इस्लाम ने परिवार में मर्दों और औरतों को बराबर के हक़ दिए हैं अ उनके लिए बराबर अज्र व सवाब का वादा किया है, लेकिन बराबरी व मतलब कामों की समानता नहीं है। इस्लाम ने दोनों के काम के दार (कार्य-क्षेत्र) अलग-अलग रखे हैं और इसमें फ़ितरी सलाहियतों की भरप रिआयत रखी गई है। उनके मामलों और हक़ों में बज़ाहिर जो फ़र्क़ नज़ आता है वह उनके बीच भेदभाव और असमानता पर आधारित नहीं है बल्कि कामों के अलग-अलग तरह के होने की वजह से है। अल्लाह ने बच्च की पैदाइश और परवरिश का बड़ा और अज़ीमुश्शान काम औरत को सौंप है। वह हैज़ (माहवारी) और निफ़ास (प्रसव) और हमल (गर्भ) औ दूध पिलाने के मरहलों से गुज़रती है। ये काम उसे पूरी यकसूई (एकाग्रता और तवज्जोह के साथ करने होते हैं। इसलिए इस्लाम ने घर के अन्दर वे काम औरतों के हवाले किए हैं और बाहर के बहुत-से कामों से उसे अलग रखा है। दूसरी तरफ़ घर से बाहर के काम मर्द को सौंपे हैं और उसे औरत की हिफ़ाज़त और उसकी देखभाल करने की ज़िम्मेदारी दी है। मर्द औ औरत दोनों अपने-अपने कामों के ज़िम्मेदार हैं और दोनों से उनको सौंपे गए कामों के बारे में ख़ुदा के यहाँ पूछ-गछ होगी। अल्लाह के नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का फ़रमान है–

"मर्द अपने घरवालों का निगराँ है और उससे उनके बारे में सवाल किया जाएगा और औरत अपने शौहर के घरवालों और बच्चों की निगराँ है और उससे उनके बारे में पूछा जाएगा।"

(हदीस : बुख़ारी-5200, मुस्लिम-1829)

किसी भी इदारे (संस्था) को अच्छे तरीक़े से चलाने के लिए कामों का .वारा ज़रूरी है। अगर यह बँटवारा न हो तो उसकी सरगर्मियाँ ठप पड़ एँगी और वह अफ़रा-तफ़री और फूट का शिकार हो जाएगा। कोई भी म्पनी उसी वक़्त तरक़्क़ी कर सकती है, जब उसके कुछ मुलाज़िम ड्क्शन का काम सम्भालें और अच्छे-से-अच्छा माल तैयार करें और कुछ रे लोग मार्केटिंग का काम अंजाम दें और बाज़ार में उसकी खपत के लिए ड़-धूप करें। दोनों काम अलग-अलग तरह के हैं। एक कारख़ाने के अन्दर काम है और दूसरा कारख़ाने से बाहर का। अगर कम्पनी के हर कर्मचारी दोनों काम एक-साथ सौंप दिए जाएँ तो वह कम्पनी एक दिन भी सही क़े से नहीं चल सकती। इस्लाम ने ख़ानदान का निज़ाम चलाने के लिए मों का बँटवारा ज़रूरी समझा है। उसने औरत को घर के अन्दर के काम पे हैं और मर्द को बाहर के काम।

रतों की आज़ादी से जुड़े संगठनों की ग़लती

औरतों की आज़ादी से जुड़े (नारी-स्वतन्त्रता) संगठनों ने मर्दों और रतों के बीच बराबरी का नारा बुलन्द किया। उन्होंने माँग की कि औरतों भी ज़िन्दगी के हर विभाग में वे तमाम अधिकार और आज़ादियाँ मिलें मर्दों को हासिल हैं। मतलब यह कि इन संगठनों ने वकालत की कि रतें भी वे सारे काम करें जिसे मर्द करते हैं। ये हक़ और अधिकार के चे-ऊँचे दावे बज़ाहिर बहुत भले और ख़ूबसूरत मालूम होते हैं, लेकिन र हक़ीक़त की नज़र से देखा जाए तो यह एक धोखा है। ये हुक़ूक़ नहीं, ल्क फ़ितरत (प्रकृति) के क़ानूनों से बग़ावत है, जिसकी जीती-जागती वीर हमें मग़रिब (पश्चिम) में नज़र आती है। वहाँ सूरते-हाल यह है कि सानी समाज तमाम-तर अख़लाक़, पाकीज़गी, पाकदामनी और अम्नो-सुकून ख़ाली होता जा रहा है। हक़ीक़त में औरतों की आज़ादी पश्चिम की तरफ़ खेला जानेवाला एक ख़तरनाक खेल है, जिसका मक़सद इनसानी समाज अश्लीलता और बेहयाई फैलाना है। आज पश्चिमी देशों में ख़ानदानी ज़ाम अस्त-व्यस्त हो चुका है। लोगों की ज़िन्दगियाँ इत्मीनान और सुकून

से ख़ाली हो चुकी हैं। बदकारी, ज़िना और बलात्कार जैसे घिनौने का दिन-ब-दिन बढ़ते जा रहे हैं। मियाँ-बीवी के बीच प्यार और मुहब्बत, हमद और अपनाइयत जैसे जज़्बात ख़त्म हो रहे हैं।

मर्द ख़ानदान का सरदार

किसी इदारे (संस्था) को व्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए यह ज़रूरी कि उसका एक सरदार (ज़िम्मेदार) हो, जो उसके तमाम कामों की निगरान करे और इदारे से जुड़े लोग उसकी मातहती में अपने-अपने काम अंजाम और उसके हुक्मों और हिदायतों की पाबन्दी करें। अगर एक से ज़्यादा लोग को एक जैसे इख़्तियार के साथ किसी इदारे या संस्था का ज़िम्मेदार बन दिया जाए और हर एक आज़ादाना तौर पर अपना हुक्म चलाए तो उस इदा के निज़ाम (व्यवस्था) का अस्त-व्यस्त हो जाना यक़ीनी है। इस्लाम ने कु मस्लहतों को सामने रखते हुए ख़ानदान के निज़ाम की ज़िम्मेदारी मर्द क सौंपी है। अल्लाह का फ़रमान है—

"मर्द औरतों के सरबराह हैं।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-34)

ऊपर की आयत में अरबी शब्द 'क़व्वाम' आया है जिसका तर्जमा आ तौर से 'हाकिम' किया जाता है। इस वजह से लोगों को यह कहने का मौक़ मिल जाता है कि इस्लाम में मर्दों को हाकिमाना इख़्तियार दिए गए हैं औ औरतों को उनका मातहत बना दिया गया है। हालाँकि सही बात यह है वि इस आयत में न किसी को हाकिम बनाने की बात कही गई है, न किसी क मातहत बनाने की। अरबी ज़बान में लफ़्ज़ 'क़ा-म' के एक मानी निगरान और देखभाल करने के आते हैं। 'क़व्वाम' उस शख़्स को कहा जाता है ज किसी इदारे या निज़ाम को सही तरीक़े से चलाने और उसकी निगहबान करने का ज़िम्मेदार हो। मर्दों के औरतों पर 'क़व्वाम' होने का मतलब य है कि वे उनकी हिफ़ाज़त और निगरानी करनेवाले, उनका भरण-पोषण उ उनकी ज़रूरतों को पूरा करनेवाले हैं। इससे औरतों के हक़ों का इनकार नह होता, बल्कि सिर्फ़ एक इन्तिज़ामी ज़रूरत से मर्दों की एक दर्जा बरतरी क

इज़हार होता है। यही बात क़ुरआन में एक दूसरी जगह इस तरह कही गई है–

"औरतों के लिए भी भले तरीक़े पर वैसे ही हक़ हैं, जैसे मर्दों के हक़ उनपर हैं। अलबत्ता मर्दों को उनपर एक दर्जा हासिल है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-228)

ख़ानदानी निज़ाम में शौहर और बीवी का ताल्लुक़ मालिक और नौकर जैसा नहीं होता, बल्कि शौहर की हैसियत एक निगराँ की होती है, जिसकी देख-रेख में बीवी और बच्चे पूरी आज़ादी से अपने काम अंजाम देते हैं। शौहर उनकी हिफ़ाज़त करता और उनकी ज़रूरतों को पूरी करता है। इस वजह से औरतों को हुक्म दिया गया है कि वे अपने शौहरों की इताअत (आज्ञापालन) करें, उनकी मातहती में अपनी तौहीन महसूस न करें, बल्कि उनका कहना मानें और नाफ़रमानी न करें। अल्लाह का फ़रमान है–

"इस तरह नेक औरतें फ़रमाँबरदार होती हैं और (मर्दों के) पीछे अल्लाह की हिफ़ाज़त में (उनके हक़ों की) हिफ़ाज़त करती हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-34)

दूसरी तरफ़ मर्दों को ताकीद की गई कि वे अपनी बीवियों के साथ अच्छा बरताव करें। वे उनकी नौकरानी या ख़ादिमाएँ नहीं हैं कि उनको अपने से कमतर समझें और उनपर हर तरह का ज़ुल्म और ज़्यादती करते रहें, बल्कि वे उनकी जीवन-संगिनी हैं। इसलिए मुहब्बत, हमदर्दी और शरीफ़ाना बरताव की हक़दार हैं। अल्लाह का फ़रमान है–

"उनके साथ भले तरीक़े से ज़िन्दगी बसर करो।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-19)

प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"तुममें से बेहतर वे हैं जो अपनी औरतों के साथ अच्छे अख़लाक़ से पेश आएँ।" (हदीस : तिरमिज़ी-1162)

घरेलू हिंसा की इजाज़त नहीं

आज घरेलू हिंसा पूरी दुनिया में एक बड़ी समस्या बनी हुई है। दुनिया के सभी देशों में औरतें अपने शौहरों और अन्य रिश्तेदारों के ज़रिए से सताई जाती हैं। उन्हें जिस्मानी तौर पर भी तकलीफ़ें दी जाती हैं और मानसिक रूप में भी उनका शोषण होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के ज़रिए से कराए गए एक सर्वे के मुताबिक़ पचास प्रतिशत से ज़्यादा औरतें इस घरेलू हिंसा की शिकार हैं। भारत की सूरते-हाल भी कुछ बेहतर नहीं है। यहाँ औरतों पर ज़ुल्म और ज़्यादती की घटनाएँ रोज़ाना अख़बारों की सुर्ख़ियों में होती हैं। घरेलू हिंसा की रोकथाम के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की कोशिशों से बहुत-से क़दम उठाए गए हैं और सदस्य देशों में उनकी रोकथाम के सिलसिले में क़ानून बनाने की ताकीद की गई है। कुछ साल पहले हमारे देश में भी इस सिलसिले में एक एक्ट लागू किया गया है, मगर इसके बावजूद घरेलू हिंसा में बराबर बढ़ोत्तरी हो रही है।

इस्लाम में बीवियों पर ज़ुल्म और अत्याचार न करने के साफ़-साफ़ आदेश दिए गए हैं। एक हदीस में है कि एक बार अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अपने सहाबियों (साथियों) रज़ि० को ख़िताब करके फ़रमाया—

"अल्लाह की बन्दियों (यानी अपनी औरतों) को न मारो।"

(हदीस : अबू-दाऊद-2146, इब्ने-माजा-1985)

एक बार एक सहाबी ने प्यारे नबी (सल्ल०) से अपनी बीवी की बदज़ुबानी की शिकायत की। आप (सल्ल०) ने उन्हें समझाने-बुझाने की कोशिश की। फिर फ़रमाया—

"अपनी घरवालियों को उस तरह से न मारो जिस तरह अपनी लौंडी को मारते हो।" (हदीस : अबू-दाऊद-142)

क़ुरआन मजीद की सूरा-4 निसा, आयत-34 में औरतों को मारने का ज़िक्र है। उसमें कहा गया है कि जो औरतें सरकशी पर आमादा हों उन्हें समझाओ-बुझाओ, रात में बिस्तरों पर उनसे अलग रहो और उन्हें मारो। इस आयत का हवाला देकर कहा जाता है कि इस्लाम ने औरतों पर अत्याचार को जाइज़ ठहराया है। ऐसा कहना इस आयत का ग़लत मतलब निकालना

है। पहली बात तो यह है कि यह हुक्म आम हालात के बारे में और आम औरतों के बारे में नहीं है, बल्कि इसका ताल्लुक़ उन औरतों से है जो सरकशी कर बैठती हैं। सरकशी के लिए अरबी में नुशूज़ शब्द इस्तेमाल हुआ है जिसका मतलब है कि 'बुलन्द होना'। बीवी के ताल्लुक़ से नुशूज़ का मतलब यह है कि वह खुद शौहर से अपने-आपको ऊपर समझने लगे, उसका कहना न माने, शौहर की मरज़ी के ख़िलाफ़ काम करे और उससे नफ़रत का इज़हार करे। लुग़त (शब्दकोश) के माहिरों और क़ुरआन के मुफ़स्सिरों (टीकाकारों) ने इस शब्द की यही व्याख्या की है।

दुनिया के किसी इदारे (विभाग) में उसके सरबराह के ख़िलाफ़ किसी मुलाज़िम की सरकशी और बग़ावत को बरदाश्त नहीं किया जाता। क़ोई मुलाज़िम अपनी ज़िम्मेदारी सही ढंग से न निभाए, अपने सौंपे हुए काम को अंजाम न दे, इदारे का ज़िम्मेदार उसे कोई काम करने को कहे या किसी काम से रोके तो उसे आँखें दिखाए और बदज़ुबानी पर उतर आए तो अगले ही लम्हे उसके हाथ में बरख़ास्तगी का परवाना (निलम्बन पत्र) थमा दिया जाता है। यही बात अगर ख़ानदानी निज़ाम में औरत की तरफ़ से हो तो वह खुद को उस ख़ानदान में शामिल रहने के हक़ से महरूम कर लेती है, लेकिन औरतों के मामले में इस्लाम की नरमी का सुबूत यह है कि उसने शौहरों को ताकीद की कि पहले ही मरहले में ऐसी औरतों के ख़िलाफ़ आख़िरी क़दम न उठाएँ, बल्कि उन्हें समझाएँ-बुझाएँ, फिर भी न मानें तो उनसे प्यार और मुहब्बत की निगाहें फेर लें, फिर भी वे अपना रवैया न बदलें तो उन्हें बहुत मामूली जिस्मानी सज़ा दें। सज़ा का मक़सद बीवी को तंबीह और सचेत करना है, न कि उसपर ज़ुल्म ढाना और हिंसा करना। इसलिए हदीस में इसकी व्याख्या यह की गई है कि यह सज़ा इतनी हल्की हो कि उसका जिस्म पर हल्का-सा भी निशान ज़ाहिर न हो।

बीवियों पर ज़ुल्म और अत्याचार इस्लाम की नज़र में कितना नापसन्दीदा है इसका अन्दाज़ा उस हदीस से अच्छी तरह लगाया जा सकता है जिसमें प्यारे नबी (सल्ल॰) के दौर में एक बार कुछ लोगों ने अपनी बीवियों की पिटाई की। उन औरतों ने प्यारे नबी (सल्ल॰) के पास अपनी शिकायत

पहुँचाई। आप (सल्ल॰) को जब यह मालूम हुआ तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"वे लोग (जो अपनी बीवियों से बुरा बरताव करते हैं) अच्छे इनसान नहीं हैं।" (हदीस : अबू-दाऊद-2146)

औरत पर कमाने का बोझ नहीं

ख़ानदानी ज़िन्दगी में औरत पर कमाने का बोझ नहीं है और ख़ानदानवालों की माली ज़रूरतों को पूरा करने और उनके ख़र्चे का बोझ उठाने की ज़िम्मेदारी मर्द पर रखी गई है। (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-34) कहा जाता है कि इस्लाम का यह हुक्म औरतों को पूरे तौर पर मर्दों के मातहत और मोहताज बना देता है और घर बैठे रहने से उनकी सलाहियतें दबकर रह जाती हैं। लेकिन हक़ीक़त की नज़र से देखा जाए तो यह औरतों पर ज़्यादती और उनके हक़ों को छीनना नहीं, बल्कि उनकी इज़्ज़त और एहतिराम है। इस्लाम ने ख़ानदानी निज़ाम में कामों की जो तक़सीम की है उसका तक़ाज़ा है कि औरत घर के मोर्चे को सम्भालने और उसे मज़बूत करने के लिए पूरी तवज्जोह लगाए रखे और उसी के लिए अपने-आपको यकसू (एकाग्र) कर ले। पैसा कमाने की जिद्दो-जुहद में लगने से उसकी यकसूई और एकाग्रता में ख़लल (विघ्न) पड़ सकता है। इसलिए उसको इससे आज़ाद रखा गया और ख़ानदान के तमाम ख़र्चों को पूरा करने की ज़िम्मेदारी मर्द पर डाली गई।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि औरत की मआशी (आर्थिक) जिद्दो-जुहद या माल कमाने के लिए दौड़-धूप करना इस्लाम की नज़र में हर हाल में नापसन्दीदा है। बहुत-सी ऐसी परिस्थितियाँ आ सकती हैं कि उसे माल कमाने में दौड़-धूप करनी पड़े। मिसाल के तौर पर बाप का इन्तिक़ाल हो जाए और बच्चों को पालने-पोसने और उनकी ज़रूरतों को पूरी करनेवाली सिर्फ़ माँ हो, बाप तंगदस्त (ग़रीब) हो और जो कुछ कमाता हो उससे बच्चों के ख़र्चे पूरे न होते हों या शौहर बीमार होकर कमाने की हालत में न हो या उसकी कमाई से घर के ख़र्चे तो जैसे-तैसे पूरे हो जाते हों, लेकिन बीवी के

हाथ बटाने से घर में ख़ुशहाली आ सकती हो। इसके अलावा और भी शक्लें हो सकती हैं। बहरहाल कुछ शर्तों के साथ शरीअत में औरत को कमाने की इजाज़त दी गई है–

पहली बात तो यह कि औरत की मआशी जिद्दो-जुहद के लिए शौहर की इजाज़त ज़रूरी है। उसकी मरज़ी के बग़ैर या उसके मना करने की स्थिति में औरत के लिए ऐसा करना सही नहीं है।

दूसरी बात यह कि शरीअत में औरतों के लिए पर्दे का हुक्म दिया गया है और अजनबी मर्दों और औरतों के बीच आज़ादाना मेलजोल से सख़्ती से मना किया गया है। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है–

"कोई अजनबी मर्द और औरत अकेले में मिलते हैं तो उनके बीच तीसरा शैतान होता है।" (हदीस : तिरमिज़ी-1171)

इसलिए औरत कोई ऐसा काम ही कर सकती है जिसमें शरीअत के इन आदेशों का ख़याल रखा गया हो।

बहरहाल औरत के माल कमाने की दौड़-धूप में लगने से पहले यह देखना ज़रूरी है कि ख़ानदानी निज़ाम में उसकी अस्ल ज़िम्मेदारियाँ तो मुतास्सिर नहीं हो रही हैं।

एक से ज़्यादा बीवियाँ

इस्लाम ने एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने की इजाज़त दी है, यानी मर्द एक साथ एक से ज़्यादा बीवियाँ रख सकता है। इसकी ज़्यादा-से-ज़्यादा हद चार तय की गई है। (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-3) इस्लाम की इस तालीम (शिक्षा) को निशाना बनाया जाता है और इसपर कई प्रकार के एतिराज़ किए जाते हैं। इसलिए इसपर कई पहलुओं से ग़ौर करने की ज़रूरत है–

पहली बात तो यह कि इस्लाम यह नहीं कहता कि इसको मानना और इसपर अमल करना तमाम लोगों के लिए ज़रूरी है और इसके नतीजे में तमाम मुसलमान लाज़िमी तौर पर चार शादियाँ करते हैं, बल्कि यह इजाज़त है कि अगर कभी ऐसे हालात आ ही जाएँ तो एक से ज़्यादा (चार तक) निकाह किए जा सकते हैं।

दूसरी बात यह कि कभी भी ग़ैर-मामूली हालात पेश आ सकते हैं, मिसाल के तौर पर जंगें पहले भी होती थीं और अब भी जारी हैं। अगर कभी किसी इलाक़े में बड़े पैमाने पर मर्द हलाक हो जाएँ और औरतों का अनुपात ज़िन्दा बच जानेवाले मर्दों से कहीं ज़्यादा हो तो एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने की इजाज़त के उसूल को अमल में लाते हुए इस मसले पर क़ाबू पाया जा सकता है। अगर इसकी इजाज़त न दी जाए तो बदकारी और बदचलनी आम होने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं।

तीसरी बात यह कि कभी-कभी व्यक्तिगत हालात भी एक से ज़्यादा निकाह करने का तक़ाज़ा करते हैं। मिसाल के तौर पर किसी शख़्स की बीवी किसी ऐसी बीमारी से ग्रस्त हो जिसके चलते शादी-शुदा ज़िन्दगी का हक़ अदा न हो पा रहा हो तो अब या तो आदमी उसे तलाक़ देकर दूसरा निकाह कर ले, या दूसरी शादी के बाद उसे भी बीवी की हैसियत से बाक़ी रखे, या किसी शख़्स की कोई रिश्तेदार औरत बेवा हो जाए और उसे सहारे की ज़रूरत हो।

चौथी बात यह कि क़ुरआन ने एक से ज़्यादा बीवी रखने के लिए न्याय और इनसाफ़ की शर्त लगाई है। इस्लाम ने जहाँ चार औरतों तक से निकाह करने की इजाज़त दी है, वहीं साथ ही यह भी कहा है—

> "अगर तुम्हें अन्देशा हो कि उनके साथ इनसाफ़ न कर सकोगे तो
> फिर एक ही बीवी करो।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-3)

इसका साफ़ मतलब यह है कि अगर कोई बीवियों के बीच न्याय और इनसाफ़ नहीं कर सकता तो वह सिर्फ़ एक बीवी रखे। वरना उसे ख़ुदा के सामने उसकी जवाबदेही करनी होगी।

पाँचवीं बात यह मान लेना ग़लत है कि मुसलमानों में एक से ज़्यादा निकाह करने का चलन आम है। भारत में हर दस साल पर आबादी के जो आँकड़े जमा किए जाते हैं उनके मुताबिक़ मुसलमानों में एक से ज़्यादा बीवी रखने का अनुपात हिन्दुओं से कम है।

ालाक़ का मसला

इस्लाम पर एतिराज़ करनेवाले तलाक़ के मसले को बहुत भयानक नाकर पेश करते हैं। वे कहते हैं कि तलाक़ के ज़रिए से मर्द के हाथ में ौरत को सताने और धमकाने का एक हथियार थमा दिया गया है। सलमानों में इस्लाम की तालीमात (शिक्षाओं) को न जानने और जहालत ाम होने की वजह से तलाक़ का जिस बेदर्दी से इस्तेमाल किया जाता है, ससे भी इस्लाम-विरोधियों को मौक़ा मिलता है। क़ुरआन मजीद में तलाक़ ; बारे में जो अहकाम और आदेश बयान किए गए हैं उनका अध्ययन किया ाए तो बहुत आसानी से उसका औचित्य समझ में आ जाता है।

क़ुरआन ने मर्दों को हुक्म दिया है कि वे अपनी बीवियों के साथ अच्छा लूक करें। अगर वे उन्हें नापसन्द हों तब भी उनसे दूर रहने या मुँह फेरने ा रवैया मुनासिब नहीं, इसलिए कि इसकी पूरी उम्मीद है कि अल्लाह ने हुत कुछ भलाई उनके साथ रख दी हो। क़ुरआन कहता है—

> "उनके साथ भले तरीक़े से ज़िन्दगी बसर करो। अगर वे तुम्हें नापसन्द हों तो हो सकता है कि एक चीज़ तुम्हें पसन्द न हो, मगर अल्लाह ने उसमें बहुत कुछ भलाई रख दी हो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-19)

क़ुरआन मर्दों को ताकीद करता है कि अगर बीवियों की तरफ़ से कशी की जाए तो भी फ़ौरन उन्हें अपनी ज़िन्दगियों से अलग न करें, ल्कि उन्हें समझाएँ-बुझाएँ, बिस्तरों में रहते हुए उनसे लाताल्लुक़ी ज़ाहिर ;, ताकि उन्हें नफ़सियाती तौर पर तंबीह हो। इससे भी वे अगर सरकशी बाज़ न आएँ तो उन्हें तंबीह के तौर पर हलकी चोट लगाएँ। (क़ुरआन, ा-4 निसा, आयत-34) अगर मन-मुटाव बहुत ज़्यादा बढ़ गए हों और याँ-बीवी अपने तौर पर उन्हें हल न कर पा रहे हों तो दोनों की तरफ़ से ़-एक हकम (सुलह-सफ़ाई करानेवाले) मुक़र्रर हों और वे इख़्तिलाफ़ात को करने और मुवाफ़क़त पैदा करने की कोशिश करें (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, यत-35), लेकिन अगर तलाक़ की नौबत आ ही जाए तो मर्द एक तलाक़ र छोड़ दे। इद्दत गुज़ारने के बाद औरत आज़ाद हो जाएगी। इद्दत के

दौरान भी मर्द को वापस लेने का इख़्तियार होगा और इद्दत गुज़ारने के ब
भी अगर वे पलटना चाहें तो निकाह के ज़रिए से फिर पति-पत्नी की हैसि
से रह सकते हैं। दूसरी मर्तबा तलाक़ देने पर भी वापसी का हक़ बाक़ी रह
है, लेकिन अगर तीसरी बार तलाक़ दे दी जाए तो औरत हमेशा के लि
हराम हो जाती है। (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-2

तलाक़ एक नागुज़ीर समाजी ज़रूरत है। इसी वजह से दूसरे मज़हबों
भी इसको तसलीम (स्वीकार) किया गया है। यहाँ तक कि जिन मज़हबों
इसकी गुजांइश नहीं थी, अब उनमें भी इसे क़ानूनी शक्ल दे दी गई है

इस्लाम ने तलाक़ का हक़ मर्दों को दिया है। इसकी बहुत-सी हिक
हैं। इस्लामी शरीअत में निकाह के हर मरहले में मर्द को ख़र्च बरदाश्त कर
पड़ता है। मह्र वह अदा करता है, निकाह के ख़र्चे वह बरदाश्त करता
वलीमा वह करता है। खाने-ख़र्चे की ज़िम्मेदारी वह उठाता है, इसी वजह
तलाक़ का हक़ भी शरीअत ने मर्द को दिया है।

ख़ुला का हक़

लेकिन अगर किसी वजह से औरत अपने शौहर के साथ ज़िन्दगी
गुज़ारना चाहे तो ख़ुला के ज़रिए से उसे भी अलग होने का हक़ हासिल

अल्लाह का फ़रमान है—

"अगर तुम्हें यह डर हो कि वे दोनों (यानी मियाँ-बीवी) अल्लाह की हदों पर क़ायम न रह पाएँगे तो इन दोनों के बीच यह मामला हो जाने में कोई हरज नहीं कि औरत अपने शौहर को कुछ मुआवज़ा देकर अलग हो जाए।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-229)

इस आयत में बताया गया है कि अगर किसी वजह से बीवी के
में शौहर से सख़्त नफ़रत पैदा हो गई हो और वह उसके साथ किसी भी
में न रहना चाहती हो तो शरीअत ने उसके लिए भी शौहर से छुटकारा
का तरीक़ा बताया है और वह यह है कि वह कुछ माल शौहर को दे-दिला
उससे अपना पीछा छुड़ा ले और उसे तलाक़ के लिए राज़ी कर ले। हर्द

मालूम होता है कि ख़ुला की शक्ल (स्थिति) में औरत को मह्र की रक़म
नस करनी होगी।

ख़ुला की हैसियत एक तलाक़ 'तलाक़े-बाइन' की है। बाद में अगर दोनों बीच सुल्ह हो जाए और वे दोबारा एक-साथ रहने पर आमादा हो जाएँ उनका नए मह्र के साथ दोबारा निकाह हो सकता है। अगर शौहर बीवी खुला की दरख़ास्त क़बूल न करे और तलाक़ देने पर आमादा न हो तो वी क़ाज़ी की अदालत में अपना केस दायर करेगी और क़ाज़ी उसका काह ख़त्म कर देगा।

र्ग हत्या की इजाज़त नहीं

निकाह के नतीजे में मियाँ-बीवी को क़ुदरत की तरफ़ से औलाद का हफ़ा मिलता है। इस्लाम ने मियाँ-बीवी को पाबन्द किया है कि वे अपनी लाद की परवरिश और तालीम व तरबियत का एहतिमाम करें और इस मले में लड़कों और लड़कियों के बीच कोई भेदभाव न करें। नबी (सल्ल०) दौर में लड़कियों को ज़िन्दा दफ़न करने की रस्म जारी थी। क़ुरआन ने त सख़्त अलफ़ाज़ में औलाद के क़त्ल करने को रोका और उसकी म्मत की। कहा—

"अपनी औलाद को भुखमरी के डर से क़त्ल न करो, हम उन्हें भी रोज़ी देंगे और तुम्हें भी। हक़ीक़त में उनका क़त्ल एक बड़ी ख़ता (ग़लती) है।" (क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-31)

री जगह फ़रमाया गया—

"और जब ज़िन्दा गाड़ी हुई लड़की से पूछा जाएगा कि वह किस क़ुसूर में मारी गई?" (क़ुरआन, सूरा-81 तकवीर, आयतें-8, 9)

तिब (आयूर्विज्ञान) के मैदान में नई-नई खोजों के नतीजे में ऐसी ीनों की खोज कर ली गई है जिनसे माँ के पेट में पल रहे बच्चे के लिंग पता किया जा सकता है और लड़की हो तो गर्भ में ही मार दिया जाता । इस बिना पर लड़कियों की तादाद लड़कों के मुक़ाबले में बराबर कम हो ी है। भारत में हर दस साल पर जनगणना कराई जाती है। इसके

मुताबिक़ एक हज़ार लड़कों के मुक़ाबले में लड़कियों की तादाद 900 से कु ही ज़्यादा रहती है। अनुपात के इस अन्तर ने देश के संजीदा तबक़े क बहुत फ़िक्रमन्द कर दिया है। इस समस्या के समाधान की अनेक तदबं अपनाई जा रही हैं, लेकिन कामयाबी नहीं मिल पा रही है। क़ुरआन की इ तालीम पर अमल के नतीजे में मुसलमान इस बुरे काम से बचे हुए हैं। दू तबक़े भी इससे फ़ायदा उठाएँ तो देश से इस बुराई का आसानी से ख़ाति किया जा सकता है।

माँ-बाप और रिश्तेदारों के साथ अच्छा सुलूक

ख़ानदान का अहम हिस्सा माँ-बाप होते हैं। वे अपने बच्चों की परवरि व देख-रेख करते हैं। उन्हें बुरी चीज़ों और बातों से बचाते हैं और दुनि में ज़िन्दगी गुज़ारने का सलीक़ा सिखाते हैं, और ज़ब वे बड़े होते हैं तो उन लिए रिश्ते तलाश करके उनकी शादियाँ करते हैं। लेकिन देखा यह गया कि औलाद अपने माँ-बाप के इन एहसानों पर उनका शुक्रगुज़ार बनने बजाय उन्हें बोझ और अपनी ख़ुशियों में रुकावट समझने लगते हैं। इस नतीजे में माँ-बाप अपने घर में ही अजनबी बन जाते हैं, फिर या तो घुट-घुटकर अपनी बाक़ी ज़िन्दगी गुज़ारते हैं या वृद्धा आश्रम में जाकर पन लेते हैं। वृद्धा आश्रम बीसवीं सदी की पैदावार है। पूरी दुनिया में इनव चलन बहुत तेज़ी से हुआ है। 2005 ई॰ तक अमेरिका में ग्यारह हज़ार वृद्ध आश्रम क़ायम हो चुके थे। अगले पाँच सालों में और एक हज़ार की बढ़ोत्त हुई। स्पेन में पाँच हज़ार वृद्धा आश्रम क़ायम हो चुके हैं। भारत में भी य कल्चर तेज़ी से बढ़ रहा है। 1950 ई॰ से पूर्व पूरे मुल्क में सिर्फ़ छियानवे(9 वृद्धा आश्रम (Old Age Home) थे। 2009 ई॰ में उनकी तादाद तक़रीब तेरह हज़ार हो गई।

इस्लाम ने माँ-बाप के साथ अच्छे सुलूक का जो तसव्वुर दिया है, व वृद्धा आश्रम के कल्चर से बिलकुल ही अलग है। क़ुरआन में मुख़्तलि जगहों पर उनके साथ अच्छा सुलूक करने की ताकीद की गई है। नीचे सि एक जगह की आयतें पेश की जा रही हैं—

"तेरे रब ने फ़ैसला कर दिया है कि तुम लोग किसी की इबादत

न करो, मगर सिर्फ़ उसकी। माँ-बाप के साथ नेक सुलूक करो, अगर तुम्हारे पास इनमें से कोई एक या दोनों बूढ़े होकर रहें तो उन्हें उफ़ तक न कहो, न उन्हें झिड़ककर जवाब दो, बल्कि उनसे एहतिराम के साथ बात करो और नरमी और रह्म के साथ उनके सामने झुककर रहो, और दुआ किया करो कि परवरदिगार! इनपर रह्म फ़रमा जिस तरह इन्होंने रहमत और शफ़क़त (प्यार-मुहब्बत) के साथ मुझे बचपन में पाला था।"

(क़ुरआन, सूरा-4 बनी-इसराईल, आयतें-23, 24)

क़ुरआन माँ-बाप के साथ रिश्तेदारों के हुक़ूक़ अदा करने और उनके साथ सिला-रहमी (अच्छा व्यवहार) करने की ताकीद करता है। चुनांचे बहुत-सी जगहों पर अच्छे सुलूक के हक़दारों में माँ-बाप के साथ रिश्तेदारों का भी ज़िक्र किया गया है। क़ुरआन में है—

"माँ-बाप और रिश्तेदारों के साथ अच्छा सुलूक करो।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-36)

विरासत में औरत का हक़

इस्लाम पर एक एतिराज़ यह किया जाता है कि उसने ख़ानदान में औरत को मर्द से कमतर हैसियत दी है। चुनांचे विरासत में बीवी को शौहर के मुक़ाबले में, बहन को भाई के मुक़ाबले में और बेटी को बेटे के मुक़ाबले में आधा हिस्सा मिलता है। इस तरह यह तास्सुर देने की कोशिश की जाती है कि यह तफ़रीक़ (फ़र्क़) और भेदभाव जिंस (लिंग) की बुनियाद पर किया गया है। हालाँकि अगर ख़ानदानी निज़ाम में हर एक के फ़राइज़ और ज़िम्मेदारियों पर भी नज़र हो तो इसकी माक़ूलियत अच्छी तरह से समझी जा सकती है।

जाहिलियत के ज़माने में औरत विरासत से पूरे तौर से महरूम थी। इस्लाम ने उसका हिस्सा मुक़र्रर किया। क़ुरआन में है—

"मर्दों के लिए उस माल में से हिस्सा है जो माँ-बाप और क़रीबी रिश्तेदारों ने छोड़ा हो, और औरतों के लिए भी उस माल में हिस्सा

है जो माँ-बाप और क़रीबी रिश्तेदारों ने छोड़ा हो, चाहे थोड़ा हो या बहुत और यह हिस्सा (अल्लाह की तरफ़ से) मुक़र्रर है।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-7)

इस्लाम ने जिन लोगों को विरासत का हक़दार क़रार दिया है उनमें औरतों की तादाद मर्दों से ज़्यादा है। इसलिए पहली तक़सीम उन लोगों की है जिनपर फ़र्ज़ वाजिब होता है, जिनके हिस्से मुक़र्रर हैं। इनमें चार— बाप, दादा, अख़याफ़ी (जिनके बाप अलग-अलग हों और माँ एक हो) भाई, और शौहर— मर्द हैं तो आठ औरतें— माँ, दादी, बेटी, पोती, सगी बहन, अल्लाती (जिनकी माँ अलग-अलग हों और बाप एक हो) बहन, अख़याफ़ी बहन, और बीवी— हैं।

बहुत-सी हालतों में विरासत में मर्द और औरतों के हिस्सों में जो फ़र्क़ रखा गया है वह जिंस की बुनियाद पर नहीं, बल्कि ज़िम्मेदारियों की बुनियाद पर है। इस्लाम के ख़ानदानी निज़ाम में ज़िम्मेदारियों का बार मर्द पर डाला गया है और औरत को उससे बिलकुल आज़ाद रखा गया है। मिसाल के तौर पर बेटे को बेटी के मुक़ाबले में दो गुना मिलता है। इसकी वजह यह है कि बेटा अपने बीवी-बच्चों की ज़रूरतें पूरी करता है, जबकि बेटी की पूरी मीरास महफ़ूज़ रहती है।

इस्लाम ने ख़ानदान के बारे में जो तालीमात (शिक्षाएँ) दी हैं और ख़ानदान के लोगों के जो हक़ और फ़राइज़ बयान किए हैं, अगर उनपर सही तरीक़े से अमल किया जाए तो सही और नेक बुनियादों पर ख़ानदान परवान चढ़ेगा, ख़ुशी व मसर्रत का माहौल बनेगा और मिसाली व पाकीज़ा समाज वुजूद में आएगा।

•••